

हमारे मुशकिलात

आयतुल्लाहिल उजमा सैय्यदुल उलमा मौलाना अली नकी नक्वी

आपने अंदाज़ा किया होगा कि कांग्रेस लफ़्ज़ नहीं तो मानी के ऐतेबार से, ज़ाहिर नहीं तो बातिन में ख़ालिस हिन्दू या हिन्दू परवर जमात है। यह सहीह है कि उसको आपके इम्तियाज़ी खुसूसियात से कोई अदावत या नफ़रत नहीं है। न आप ही को इससे कोई पुरखाश है। चुनांचे हिन्दुस्तान के वाक़ियात बताते हैं कि सब तरह के फ़िरका वाराना फ़सादात हुए मगर हिन्दु शिया फ़साद कभी नहीं हुआ। फिर भी ये देखिये कि जब इसका रक़बा मुशतरिक नुक़तए इस्लाम के ख़िलाफ़ होगा। तो क्या इसकी ज़द में आप न आएंगे। इसके अलावा सियासी मस्लहेत की बिना पर अगर वह मुसलमानों की किसी जमाअत की दिलजोई करना चाहे तो वह अकसरियत का दिल हाथ में लेने की कोशिश करेगी, या अक़लियत का? रह गया इन्साफ़ और कमज़ोरों की हमदरदी का सवाल वह मौजूदा ज़माने में अतंकि तनाज़ो ललबका के दरिन्दगाना ज़ब्बे ने फ़लसफ़े की शक्ल इख़तियार कर ली है, ख़्वाब व ख़्याल है। इसके अलावा यह भी है कि बाज़ मुसलमान जो जमहूर से अलग होकर इसके दस्त व बाजू या आला-ए-कार से बने हुए हैं वह उन्हीं अनासिर में से हैं कि जो आपके वुजूद को सफ़हए आलम से फ़ना कर देना चाहते हैं उन्हीं में से बाज़ अफ़राद की रज़ा मंदी के लिए लखनऊ में वह हुआ जिसने हमेशा के लिए कांग्रेस के दामन को दाग़दार बना दिया है। आपने अपने मज़हब के ऐहताराम की बिना पर इतनी रवादारी भी उनके साथ नहीं बरत सकते जैसी स्वामी श्रद्धा नन्द आनजहानी को मस्जिद जामा दहली के मिम्बर पर भेज कर या अपने माथे पर सिन्दूर का टीका लगाकर आपके अलावा बाज़ दूसरी जमातों की

तरफ़ से ज़ाहिर हुई या हो सकती है। दूसरी तरफ़ मुस्लिम लीग है यह तमाम मुसलमानों का मुशतरिक इदारा कहा जाता है और उसमें हमारी कौम के बहुत से मुमताज़ अफ़राद नुमायां दर्जे भी रखते हैं। मगर अफ़सोस है कि बहैसियते मजमूई इस इदारे का तर्ज अमल हमारे फ़िर्के के साथ मुगाएरत का रहा है बल्कि मालूम होता है कि इसे हमारे कौमी वुजूद का एहसास ही नहीं है। इन्फ़ेरादी तौर पर इसके बहुत से अरकान शीयों के ख़िलाफ़ तहरीकात में हिस्सा लेते रहे हैं और गुज़िश्ता इबतेला व मसाइब के दौर में वह इस फ़र्ज़ को अंजाम नहीं दे सकी जो मुसलमानों की एक मुशतरिक मरकज़ी जमात को अंजाम देना चाहिए था। हमारी जो मुमताज़ शख़सियतें वहां मौजूद हैं उनका इस फ़ज़ा में पहुंच कर अपने कौमी मफ़ाद के तहफ़फ़ुज़ से बेबस हो जाना, यह समझने के लिए काफी है कि हमारी शिरकत वहां हमारे कौमी मफ़ाद के लिए हरगिज़ मुफ़ीद नहीं हो सकती। यह कहना कि शिया बहैसियत मजमूई वहां दाख़िल होकर अपने मफ़ाद का तहफ़फ़ुज़ कराएं खुद अपने को धोका देना है जबकि मुसलमानों को सात करोड़ की तादाद में होते हुए यह मशवरह नहीं दिया जाता कि वह कांग्रेस में जाकर अपने हुकूक़ तसलीम करायें तो शिया जिनकी तादाद मुख़ालिफ़ हलकों में बहुत कम बताई जाती है। अपनी इस बड़ी अक्सरियत से क्योकर ज़बर्दस्ती अपने मफ़ाद का तहफ़फ़ुज़ करा सकते हैं। यह ख़्याल कि हिन्दू मुस्लिम में इख़तिलाफ़ तहज़ीब व मुआशेरत का है इसलिए उनमें इत्तेहाद मुमकिन ही नहीं मगर शिया सुन्नी तहज़ीब व मुआशेरत बिल्कुल मुत्तहिद हैं

(बक़िया पेज नं० 15 पर.....)

आजिज़ आकर फ़रेब का जाल बिछाता है और कहता है मुसलिम! तुम नाहक अपनी जान देते हो तुम्हारे लिए अमान है। इसके जवाब में ज़ख़मों से चूर-चूर थका हुआ बहादुर जवाब देता है। "कसम बख़ुदा मेरा हाथ फ़ासिक व फ़ाजिर की तरफ़ बैअत के लिए न बढ़ेगा। मुझसे उसकी उममीद न रखना कि मैं इस शर्त से अमान हासिल करूँ यह था फ़र्ज़े सिफ़ारत जिसके लिए इमाम ने अपने अहलेबैत में चुन कर मुसलिम को भेजा था। इमाम की कमाल फ़िरासते रूहानी थी कि मुसलिम ऐसी ज़बर्दस्त कुव्वत को अपना सफ़ीर बनाकर भेजा जिसने शुजाअते इमाम का नमूना दिखलाकर साबित कर दिया कि इमाम की रफ़ाक़त के लिए ऐसी दो ज़ातें मौजूद थीं जो यज़ीद की कुल फ़ौज पर भारी हो सकती हैं। एक मुसलिम जिसको अपना सफ़ीर बना दिया। दूसरा अली का शेर अब्बास (अ०) जिसको अलमदार बनाया। यह दोनों कुव्वते बाजू अपने-अपने मक़ाम पर साबित कर गए कि इमाम के पास यज़ीद से मुकाबले का कितना ज़बर्दस्त सरमाया मौजूद था। मगर फ़ौज कशी खुद मनज़ूर न थी। अपनी दोनों कुव्वतों को मुताफ़रिफ़ करने के लिए एक को अपना सफ़ीर करके भेजा और दूसरे को अपना महकूम बनाकर पेशे नज़र रखा कि इन दोनों की मुत्तफ़ेका कुव्वत से शहादत की अस्ल गर्ज फ़ौत न हो जाए। मुहम्मद हनफ़िया भी दुनियाए शुजाअत पर अपनी तलवार का सिक्का बिठाल चुके थे। उनको अपना मक़ामी वसी बनाकर मदीने में छोड़ा कि यह बिफरे हुए अली के शेर क़यामत न बरपा कर दें। मुसलिम(अ.) को इस जानिसारी का वह समरा मिला कि उसने अपने मुआसेरीन में आपको सब से बलन्द मर्तबे पर पहुंचाया सैंकड़ों को मारकर मकर व विगा से गिरफ़तार होकर इब्ने ज़ियाद के सामने आए बाला ख़ाने पर लाया। रूहानियत के मेराजे कमाल पर पहुंचे, ईसा से बालातर अपकी शहादत को उरुज

हासिल हुआ। क़ातिल के हाथ में तलवार है सर पर वार हुआ चाहता है, सफ़ीर के ज़बान पर कलमए शहादतैन, दिल में खुदा की याद, पुर हसरत निगाहें इशारों में अपने आका को बुला रही हैं।

मुजरिमे इश्क़ तवामे मी कशद गूगा अस्त
तू नीज़ बर सरे बाम आका खुश तमाशा अस्त
(अख़बार असद, लखनऊ मुहर्म्म नम्बर, 1355हि. से अनुवादित)

(बक़िया पेज नं० 16 का.....)

इस बिना पर सही नहीं मालूम होता कि उन दोनों जमातों में मज़हबी इख़तेलाफ़ ही ने नुक्तए नज़र और ज़ेहनियत को इस दर्जा बदल दिया है कि दोनों फ़िरकों की तहज व मुआशेरत भी एकसां नहीं रही है इसलिए कि तहज़ीब व मुआशेरत की तशकील भी मज़हबी ख़्यालात के मातहत होती है। इसकी तशरी अगर की जाए तो बहुत कुछ कहने की ज़रूरत पड़ेगी मगर सरदस्त बस इतना मुलाहेज़ा फ़रमाइये कि तेरह सदी के तारीखी वाक़ियात जिस ख़लीज को वसी करते रहे हों वह एक दिन में कैसे पाटी जा सकती है। दुनिया में अब एक तीसरी ताक़त रह जाती है वह सरकार बरतानिया की है मगर यह ज़ाहिर है कि सरकार का आपके साथ कोई क़राबत या रिश्तेदारी नहीं है। मौजूदा दुनिया का आस्मान व ज़मीन "सियासत" है और सियासी मुसालेह अक्सरियत की खाजिर दारी व दिलजुई के मताकाज़ी। अस्ला यह है कि अगर आपकी 4 हस्ती कोई "हस्ती" हो तो नज़र उठाकर देखा भी जाए। उस सूरत में सरकार पर मौकूफ़ नहीं बल्कि बड़े भाई भी दस्ते शफ़क़त फेरेंगे। इसको मंज़ले भाई की भी निगाहे रहमत से देखेंगे। आख़िर में निगाह यहीं पर जाकर ठहरती है कि पहले अपनी कौमी ज़िंदगी की तशकील कीजिए यानी अपनी हस्ती को काएम कीजिए मगर यह किस तरह हो, जबकि हमारे यहां हर जमा की कोशिश तफ़रीक़ का नतीजा बख़्शाती है, इदारों की कसरत ने हमारे ख़्वाबे कौमियत को परेशाल कर रखा है। कोम के लिए मुत्तहिद जमियत, मुत्तहिद आरजू, मुत्तहि मक़सद की ज़रूरत है। शायद इसी लिए "आल पार्टीज़" साबित हो। इस कांफ़्रेंस के मुताल्लिक़ में अपने ख़्यालात का तफ़सील के साथ इंशाअल्लाह किसी आईदा इशाअत में इज़हार करूंगा। वस्सलाम
(सरफराज़, लखनऊ, सरफराज़ डे नम्बर, यकुम जनवरी 1940ई. से अनुवादित)